International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 354-355

श्रीमदभगवद् गीता में कर्म–विमर्श

डॉ0 इन्दुमती सिंह

पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

श्रीमदभगवद् गीता काल, कर्म एवं प्रकृति के सन्दर्भ से परमात्मा एवं जीव के योग का प्रतिपादन करती है। वास्तव में यदि एक वाक्य में गीता के स्वरूप को रखना हो तो वह 'निष्काम कर्म योग' है। कर्म पद का प्रयोग श्रीमदभगवद् गीता के दूसरे अध्याय में किया गया है – *''कर्मणि एवं अधिकारः ते''*[1] कहने के पूर्व कर्म के महत्व का प्रतिपदान किया गया है –

एषा तेऽभिहिता साङख्ये बुद्धिर्योगत्विमां श्रृणु।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्म बन्धम प्रहास्यसि।।[2]

फलों की इच्छा का त्याग, कर्म फल का हेतु न होना एवं अकर्म से लगाव न होने के कारण कर्म का अधिकार मिला – किन्तु कर्म कैसा हो इसका स्पष्ट समाधान तीसरे अध्याय में किया गया है –

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः।
तदर्थ कर्म कौन्तेय मुक्तसङग समाचार।।[3]

श्रीकृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन। यज्ञ की प्रक्रिया ही कर्म है उसके अतिरिक्त जो कर्म होते हैं वे सांस्कृतिक व्यस्ततायें, कर्म बन्धन हैं न कि कर्म। कर्म तो अशुभ से मुक्त करने वाला है। यज्ञ को कामाधुक् बताया है। यह यज्ञ प्रजाजनों के साथ सृष्ट है। यज्ञ से बचे अन्न का सेवन करने वाले सन्त जन पापों से मुक्त हो जाते हैं।

यज्ञ नियत कर्मों से उत्पन्न है। कर्म वेदों से उद्भव है। वेद अक्षरब्रह्म से उद्भव है। घट–घट व्यापी परमात्मा षाष्वत रूप से यज्ञ में प्रतिष्ठित है– *'नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।'*

श्रीमदभगवद् गीता के दशवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने कहा – *'यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि'*।[4]

इस कर्म योग प्रवर्तक ग्रन्थ का प्रथम उपदेश भगवान श्रीकृष्ण ने सूर्यदेव को दिया, इसी कारण कर्म के आग्रत स्वरूप सूर्य देव हैं। वे ही सांसारिक कर्मों के भी प्रवर्तक हैं। सभी यज्ञों के कर्मज हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं – *'कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यये'*।[5]

चतुर्थ अध्याय में ही द्रव्य यज्ञ, तप यज्ञ, योग यज्ञ एवं स्वाध्याय यज्ञ का भी वर्णन किया गया है। इसी चतुर्थ अध्याय में ही कर्म क्या है ? अकर्म क्या है ? इस विषय में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित हैं।

संक्षेप में कहा जाय तो *''अराधना किं वा भक्ति''* ही कर्म है उसे करते अपने में अकर्म (अकर्तापन) देखते हुए मन्त्रवत कर्म करना ही कल्याणकारी होता है। यही कर्म बन्धन से मुक्तिकारी है।

ज्ञान एवं भक्ति दोनों मार्गों में कर्म अनिवार्य है, जो ज्ञानी ज्ञान मार्ग से कर्म का निषेध करते हैं वे वास्तव में ज्ञानी नहीं होते हैं। कोई भी पुरुष किसी काल में क्षण मात्र भी कर्म किये बिना नहीं रहता है। शुभाशुभ कर्मों का जहाँ अन्त है, परम निष्कर्मता की उस स्थिति को कर्म करके ही पाया जा सकता है।

अर्जन को निष्काम कर्म योग की अपेक्षा ज्ञान मार्ग सरल एवं सुगम प्रतीत हुआ। बुद्धि योग से युक्त ज्ञानी जन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्याग कर जन्म और मृत्यु के बन्धन से छूट जाते हैं एवं अमृतमय परमपद को प्राप्त कर लेते हैं।

योग शब्द श्रीमदभगवद् गीता में अनेक अर्थों में प्रयुक्त है किन्तु वास्तव में योग शब्द कर्म के बिना 'निरा–अर्थ' का शब्द है। कर्मों के करने के सिद्धान्त में आसक्ति त्याग एवं योगस्थ होकर कर्म करने का आदेश गीता का निष्कृष्टार्थ है। गीता के आधार पर समभाव को योग कहा गया है – *'समत्वं योग उच्यते'* पुनः कहा गया है – *'योगः कर्मसु कौशलम्।'*

यह अलग–अलग परिभाषाएं नहीं हैं किन्तु एक ही कर्म योग के कहने का ढंग है। समभाव के आये बिना कर्मों को करना ही कर्मों की कुशलता है। यही कर्म मोक्षकारी है।

ज्ञान मार्ग एवं भक्तिमार्ग में कर्म करने की महत्ता में दृष्टिकोण का अन्तर है। ज्ञान मार्गी अपनी स्थिति समझकर अपने पर निर्भर होकर कर्म करता है। कर्म करना दोनों मार्गों में हैं और वह कर्म भी एक ही है, केवल कर्म करने के दृष्टिकोण दो हैं।

कर्म की ब्रह्म में विलीनता का स्वरूप है। आशक्ति त्यागकर मुक्त भाव से युक्त ज्ञान में स्थित पुरुष जब यज्ञ के लिए कर्म करता है तो वह ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार कर्म के पर्याय यज्ञ द्वारा दैवी सम्यत की वृद्धि कर – *यज्ञेन यज्ञम यजन्त देवाः* के रूप में वह परमब्रह्म रूपी अग्नि में ब्रह्म रूपी छवि द्वारा जब ब्रह्म ही यजन करता है तब समाधि द्वारा उसी ब्रह्म भाव को प्राप्त कर लेता है। गोस्वामी तुलसी दास जी भी कहते हैं – *''सोई जानहिं जेहि देहि जनाई''*।[6]

अन्ततः उस गीता के महात्म्य का स्मरण कर इस कर्म मीमांशा का उपसंहार करते हुए वर्णित करना चाहूँगी कि जिसमें गीता जी को ही मात्र शास्त्र बताया गया है, श्रीकृष्ण ही एक मात्र परमात्मा हैं, उनके अनन्त नाम ही मन्त्र हैं, एवं उन्हीं की सेवा ही एक मात्र कर्म है– *''कर्माप्येक तस्य देवस्य सेवा''* वैसे सेवा को चाहे हम कर्म कहें किं वा धर्म कहें यही वास्तव में परमात्मा की प्राप्ति में मूल मन्त्र है।

अद्वैतवादी शंकराचार्य जी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति के बिना अन्तरात्मा शुद्ध नहीं होती –

'शुध्यति हि नान्तरात्मा कृष्णापदाम्भोज भक्तिमृते।''

भक्ति के कर्म से मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है –

भक्त्यामामाभिजानति यावान्यश्चारिम तत्वतः।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।[7]

भक्ति मन की समस्त कुण्ठाओं का शमम् कर अहंकार का समर्पण करा अनासक्ति से संयुक्त कर अखण्ड आनन्द की प्राप्ति करा देती है। गीता के भाष्यकार श्री रामानुजाचार्य जी भक्ति द्वारा ज्ञान प्राप्ति के समर्थक हैं।

यद्यपि गीता का मुख्य विषय कर्मयोग है। कर्मयोगी कामना के कुचक्र में नहीं फंसता है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कर्म को प्रधानता प्रदान करते हुए श्रीरामचरित मानस में लिखते हैं – *''कर्म प्रधान विश्व करि राखा।''*

आचार्य मुधुसूदन जी गीता के आधार पर भगवान की प्राप्ति के तीनों मान्यताओं को इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं कि प्रथम 6 अध्यायों तक कर्मयोग; मध्य 6 अध्यायों तक भक्ति योग एवं अन्तिम 6 अध्यायों में ज्ञान मार्ग का वर्णन किया गया है। वैसे तो गीता के समस्त अध्यायों में तीनों योगों की चर्चा है।

कर्म योगी ''स्वान्तः सुखायः'' अपनी अन्तरात्मा की शुद्धि एवं शान्ति के लिए अपनी परम संतुष्टि के लिए कर्म करता है। जैसा कि श्रीमदभगवद् गीता में कर्म–विमर्श वर्णित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कर्मणि एव .....।। श्रीमदभगवद् गीता – 2.47
2. एषा तेऽभिहिता .....।। श्रीमदभगवद् गीता – 2.39
3. यज्ञार्थात् कर्मणो ..... समाचार।। श्रीमदभगवद् गीता – 3.9
4. यज्ञानां .....।। श्रीमदभगवद् गीता – 10.25
5. कर्मजान्विद्धि .....।। श्रीमदभगवद् गीता – 4.32
6. कर्मजान्विद्धि .....।। श्रीरामचरित मानस अ.का., दो. 127
7. भक्त्या मामभि .....।। श्रीमदभगवद् गीता – 18.55